International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(3): 251-257

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(3): 251-257
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 08-02-2022
Accepted: 02-04-2022

Himanshu Devendra Joshi
Research Scholar, (Vidyāvāridhi) Shree Somnath Sanskrit University, Veraval, Gujarat, India

Corresponding Author:
Himanshu Devendra Joshi
Research Scholar (Vidyāvāridhi) Shree Somnath Sanskrit University, Veraval, Gujarat, India

स्याद्वाद के जनक आचार्य समन्तभद्र

Himanshu Devendra Joshi

शोधसारांश

स्याद्वाद जैनदर्शन के अंतर्गत किसी वस्तु के गुण को समझने, समझाने और अभिव्यक्त करने का सापेक्षिक सिद्धान्त है । प्रसिद्ध जैनाचार्य समन्तभद्र ने जैनपरम्परा में सर्वप्रथम 'न्यायशब्द' का प्रयोग किया और न्यायशास्त्र में स्याद्वाद का गुम्फन किया । प्रस्तुत लेख में आचार्य समन्तभद्र और उनकी प्रमुख दार्शनिक कृतिओं के विषय में चर्चा करके जैनन्याय के अंतर्गत स्याद्वाद का विश्लेषण किया गया है ।

मुख्य शब्द : जैनन्याय, स्याद्वाद, नयवाद, अनेकान्तवाद, समन्तभद्र

प्रस्तावना

आचार्य समन्तभद्र दिगम्बर जैनपरम्परा के एक विद्वान् जैनाचार्य थे । जो स्थान श्वेताम्बर परम्परा में आचार्य सिद्धसेन दिवाकर का है, वही स्थान दिगम्बर जैन परम्परा में आचार्य समन्तभद्र का है । समन्तभद्र जन्मना क्षत्रिय थे और उरगपुर नरेश के पुत्र थे । जन्म नाम शान्ति वर्मा था । आचार्य समन्तभद्र किसके शिष्य थे, गुरुपरम्परा क्या थी इतिहास में अज्ञात है । आचार्य समन्तभद्र के समय के विषय में भी विद्वानों के विभिन्न मत हैं । अधिकांश विद्वानों के मतानुसार वे वि० की छठी शताब्दी के आचार्य थे । मुनिधर्म में प्रव्रजित होकर वे अपनी प्रखर मेधा और गहन अध्ययनशीलता के बल पे विद्वद्वर्य बनें । उनके प्रबल तर्कों और युक्तियों के सामने प्रतिद्वंदी ठहर नहीं पाते थे । समन्तभद्र धर्म, न्याय, व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष, आयुर्वेद, मन्त्र एवं तन्त्र आदि विशेष विद्याओं में निपुण होने के साथ ही वाद-कला में अत्यन्त पटु थे । काशीनरेश को उन्होनें अपना परिचय इस प्रकार से दिया था ।

आचार्योऽहं कविरहमहं वादिराट् पण्डितोऽहं
दैवज्ञोऽहं भिषगहमहं मान्त्रिकस्तान्त्रिकोऽहम् ।
राजन्नस्यां जलधिवलया मेखलायामिलाया-
माज्ञासिद्धः किमिति बहुना सिद्धसारस्वतोऽहम्॥[1]

[1]तत्त्वार्थसार (प्रस्ता०), पृ० २७

अर्थात् 'मैं आचार्य हूँ, कवि हूँ, शास्त्रार्थियों में श्रेष्ठ हूँ, पण्डित हूँ, ज्योतिषी हूँ, वैद्य हूँ, मान्त्रिक हूँ, तान्त्रिक हूँ। हे राजन, सम्पूर्ण पृथिवी में, मैं आज्ञासिद्ध हूँ । अधिक क्या कहूँ मैं सिद्ध सारस्वत हूँ।'

समन्तभद्र को 'आद्यस्तुतिकार' होने का गौरव भी प्राप्त है। वे प्रसिद्ध स्तुतिकार थे। अपने इष्टदेव की स्तुति के व्याज से उन्होने एक ओर हेतुवाद के आधार पर सर्वज्ञ की सिद्धि की, दूसरी ओर विविध एकान्तवादों की समीक्षा करके अनेकान्तवाद की प्रतिष्ठा की ।उनकी लेखनी का केन्द्रबिन्दु केवल अनेकान्तवाद था। उसीके स्थापन और विवेचन में उन्होंने अपनी प्राञ्जल लेखनी का सदुपयोग किया। इसीसे उनके ग्रन्थो में अनेकान्तवाद के फलितवाद नय और सप्तभंगी का भी निरूपण मिलता है। उन्हीने जैनपरम्परा में सम्भवतया सर्वप्रथम 'न्यायशब्द' का प्रयोग करके एक ओर न्याय को स्थान दिया तो दूसरी ओर न्यायशास्त्र में स्याद्वाद को गुम्फित किया ।[2] उन्होने ही सर्वप्रथम सर्वज्ञता की सिद्धि में अधोलिखित अनुमान प्रस्तुत किया –

> सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
> अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ॥[3]

'सूक्ष्म परमाणु आदि पदार्थ, अन्तरित राम-रावण आदि पदार्थ और दूरवर्ती सुमेरु आदि पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं, अग्नि आदि पदार्थ अनुमेय होने से प्रत्यक्ष हैं। इस प्रकार सर्वज्ञ की स्थिति सम्यक् होती है।'

सिद्धान्ताचार्य पं० कैलासचन्द्र शास्त्री ने यहाँ पर शाबरभाष्य की एक पंक्ति को उद्धृत किया है और उसको आधार बनाकर शबरस्वामी के साथ समन्तभद्र का विरोध इङ्गित किया है ।[4]

> चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयकमर्थमवगमयितुमलम् । (शा० भा० १-१-२)

सिद्धान्ताचार्य पं० कैलासचन्द्र शास्त्री के मननानुसार भाष्य के सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृष्ट शब्द तथा कारिका के सूक्ष्म, अन्तरित और दूर शब्द एकार्थवाची हैं। दोनों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब का भाव दृष्टिगोचर हो रहा है और यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि एकने दूसरे के विरोध में अपना उपपादन किया है। शबरस्वामी का समय २५० से ४०० ई० तक अनुमान किया जाता है। स्वामी समन्तभद्र का भी यही समय है । यह सर्वज्ञात है कि मीमांसक वेद को अपौरुषेय और स्वतःप्रमाण मानते हैं। उनके मतानुसार वेद भूत, वर्तमान, भावि तथा सूक्ष्म व्यवहित और विप्रकृष्ट अर्थों का ज्ञान कराने में समर्थ है । इसीसे वह किसी सर्वज्ञ को नहीं मानते । किन्तु जैन वेद के प्रमाण्य को स्वीकार नहीं करते और जिनेन्द्र को सर्वज्ञ सर्वदर्शी मानते हैं । अतः समन्तभद्र ने शाबरभाष्य के विरोध में यदि सर्वज्ञ की सिद्धि हेतुवाद के द्वारा की हो तो कोई अयुक्त बात नहीं है। शायद इसी से शाबरभाष्य के व्याख्याकार कुमारिलने समन्तभद्र की सर्वज्ञताविषयक मान्यता को खूब आड़े हाथों लिया है और उसका परिमार्जन अकलंकदेव ने अपने न्यायविनिश्चय में किया है।

समन्तभद्र ने जैनन्याय की स्थापना करके उसे जो कुछ दिया है उसको पं० कैलासचन्द्र शास्त्री के वर्णनानुसार संक्षेप में इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है।

१. जैनवाङ्मय के प्राणस्वरुप अनेकान्तवाद और उसके फलित सप्तभंगीवाद की प्रक्रिया को प्रदर्शित करके दर्शनशास्त्र की प्रत्येक दिशा में उसके व्यावहारिक उपयोजन की प्रणाली को प्रचलित किया।
२. अनेकान्त में अनेकान्त की योजना करने की प्रक्रिया बतलायी।
३. प्रमाण का दार्शनिक लक्षण और फल बतलाया।
४. स्याद्वाद की परिभाषा स्थिर की।
५. श्रुतप्रमाण को स्याद्वाद और विशकलित अंशों को नय बतलाया।
६. सुनय और दुर्नय की व्यवस्था की।

आचार्य समन्तभद्र को स्याद्वाद का प्रखर और सूक्ष्म व्याख्याकार माना जाता है। उनकी रचनाओं में इसकी पुष्टि भी होती है। उन्होंने पर्याप्त साहित्य सृजन किया। देवागम स्तोत्र, स्वयंभू स्तोत्र, युक्त्यनुशासन आदि उनकी कृतियाँ हैं । उनका 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' श्रावक धर्म का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है।

आचार्य समन्तभद्र की उपलब्ध रचनाओं में दार्शनिक दृष्टि से तीन रचनाएँ उल्लेखनीय हैं - आप्तमीमांसा, युक्त्यनुशासन और स्वयंभूस्तोत्र।

१) आप्तमीमांसा -

समन्तभद्र की समग्र रचनाओं में आप्तमीमांसा विशिष्ट कृति है। इसमें ११४ कारिकाएँ या श्लोक हैं। अंतिम कारिकामें कहा है की सम्यक् और मिथ्या उपदेशों के भेद को समझाने के लिए इस आप्तमीमांसा की रचना की गयी । ग्रन्थ का प्रारम्भ इसके नामानुसार आप्त की मीमांसा से होता है।

---

[2]स्वयंभूस्तोत्रम् श्लो० १०२

[3]आप्तमीमांसा श्लो० ५

[4]जैन न्याय, पृ० ९

पाँचवीं कारिका में सर्वज्ञता की सिद्धि छठी कारिका में ग्रन्थकार समन्तभद्र कहतें है कि 'वह सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव तुम ही हो क्योंकि तुम निर्दोष हो और तुम्हारे वचन युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध हैं । और युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध इसलिए है कि आपके द्वारा प्रतिपादित मोक्षादि तत्त्व प्रमाणसे बाधित नहीं होते, जब कि आपके मत से बाह्य एकान्तवादियोंका एकान्ततत्त्व प्रत्यक्षसे बाधित है; क्योंकि एकान्तवादमें न तो परलोक ही बनता है और न पुण्य-पाप कर्म ही बनते हैं ।

इस प्रकार प्रारम्भ की आठ कारिकाओं में भूमिका बाँधकर आचार्य समन्तभद्र ने सर्वप्रथम भावैकान्त और अभावैकान्त की समीक्षा की है । उसके बाद परस्पर निरपेक्ष उभयैकान्त और अवाच्यैकान्त में दोषापादन किया है । पुनः लिखा है –

कथंचित्ते सदेवेष्टं कथंचिदसदेव तत् ।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा ॥[5]

'हे जिनेन्द्र, आपके मत में वस्तु कथञ्चित् सत् ही है, कथञ्चित् असत् ही है, कथञ्चित् सत् - असत् ही है और कथञ्चित् अवाच्य ही है । ऐसा नयदृष्टिसे है,सर्वथा नहीं ।'

अर्थात् न कोई सर्वथा सत् ही है, न सर्वथा असत् ही और न सर्वथा अवाच्य ही है । किन्तु स्वरूपकी अपेक्षा वस्तु सत् है और पररूपकी अपेक्षा वस्तु असत् है । यदि ऐसा नहीं माना जाता तो कोई भी वादी इष्टतत्त्व की व्यवस्था नहीं कर सकता; क्योंकि वस्तु की व्यवस्था स्वरूपके उपादान और पररूपके त्याग पर ही निर्भर है । यदि वस्तु को स्वरूपकी तरह पररूपसे भी सत् माना जाये तो चेतन के अचेतन होने का प्रसंग उपस्थित है । यदि वस्तु को पररूप की तरह स्वरूप से भी असत् माना जाये तो सर्वथा शून्यता का प्रसंग आ जाता है । इस तरह आचार्य समन्तभद्र ने सप्तभंगी के आद्य चार भंगों का उपपादन करके लिखा है –

शेषभङ्गाश्च नेतव्या यथोक्तनययोगतः।
न च कश्चिद्विरोधोऽस्ति मुनीन्द्र तव शासने॥[6]

'शेष तीन अंग भी उक्त नययोजनासे लगा लेने चाहिए । हे मुनीन्द्र, आपके मतमे कोई विरोध नहीं है ।'

समन्तभद्र ने यहाँ भावैकान्त और अभावैकान्तकी तरह आगे अद्वैकान्त, द्वैतैकान्त, नित्यैकान्त, अनित्यैकान्त, भेदैकान्त, अभेदैकान्त, दैववाद, पुरुषार्थवाद, हेतुवाद, आगमवाद आदि एकान्तवादों की समीक्षा करके अन्त में नयदृष्टि से सबका समन्वय करते हुए अनेकान्तवाद की सर्वत्र स्थापना की है । इन एकान्तवादों में सम्भवतया उस समय के सभी दर्शनों का समावेश हो जाता है और इस तरह समन्तभद्र ने अनेकान्तवाद की स्थापना के व्याज से सभी दर्शनों की समीक्षा की है । हमने पहले ही देखा कि जैनदर्शन द्रव्य को गुणपर्यायात्मक मानता है उसीका विश्लेषणात्मक दूसरा लक्षण उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है ।अर्थात् वस्तु प्रतिसमय उत्पन्न होती है, नष्ट होती है और ध्रुव रहती है, इस तरह वह त्रयात्मक है । इसी को सिद्ध करते हुए समन्तभद्र ने कहा है –

न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात्।
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत् ॥[7]

अर्थात् 'सामान्यरूपसे वस्तु न उत्पन्न होती है न नष्ट होती है; क्योंकि सामान्यरूप वस्तु की प्रत्येक दशा में स्पष्ट अनुस्यूत देखा जाता है । अतः अन्वयरूपसे वस्तु ध्रुव है । और विशेषरूपसे नष्ट होती और उत्पन्न होती है । अतः एक वस्तु में उत्पाद आदि तीनों एक साथ रहतें हैं । तीनों के समुदायका नाम ही सत् है ।'

आगे इसे एक दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हुए लिखा है –

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिस्वयम्।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहैतुकम्॥[8]

दृष्टान्त - एक राजाके पास सोनेका घड़ा है । राजपुत्री को वह घड़ा प्रिय है । किन्तु राजपुत्र उसको तोड़कर मुकुट बनवाना चाहता है । जब घड़ेको तोड़कर मुकुट बना तो लड़की को घटके नाश से शोक हुआ, और राजपुत्र को मुकुट बनता देख प्रसन्नता हुई । किन्तु राजा मध्यस्थ रहा उसे न शोक हुआ न हर्ष; क्योंकि वह तो स्वर्णार्थी था और सुवर्ण घट और मुकुट दोनों दशाओं में वर्तमान था । अतः एक ही वस्तुको लेकर एक ही साथ तीन व्यक्तियोंके जो तीन प्रकारके भाव हुए वे सहेतुक हैं । इसलिए वस्तु त्रयात्मक है ।

मीमांसक कुमारिलने भी समन्तभद्र के ही दृष्टान्त को उन्हीं के शब्दों में व्यक्त करते हुए सामान्यनित्यता को स्वीकार किया है –

वर्धमानकभङ्गे च रुचकः क्रियते यदा।

[5]आप्तमीमांसा श्लो० १४

[6]आप्तमीमांसा श्लो० २०

[7]आप्तमीमांसा श्लो० ५७

[8]आप्तमीमांसा श्लो० ५९

तदा पुर्वार्थिनः शोकः प्रीतिश्चाप्युत्तरार्थिनः॥
हेमर्थिनस्तु माध्यस्थ्यं तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम्।
नोत्पादस्थितिभङ्गानामभावे स्यान्मतित्रयम् ॥
न नाशेन विना शोको नोत्पादेन विना सुखम्।
स्थित्या विना न माध्यस्थ्यं तेन सामान्यनित्यता॥[9]

अर्थात् 'जब सोने के प्यालेको तोड़कर उसकी माला बनायी जाती है तब प्याले के अर्थी को शोक होता है, माला के अर्थीको प्रसन्नता होती है, किन्तु सुवर्ण के अर्थी को न शोक होता है और न प्रसन्नता । अतः वस्तु त्रयात्मक है । क्योंकि उत्पाद स्थिति और विनाशके अभाव में तीन प्रकार की बुद्धियाँ नहीं हो सकतीं – नाश के बिना शोक नहीं हो सकता, उत्पाद के बिना सुख नहीँ हो सकता और स्थिति के बिना माध्यस्थ्य नहीं हो सकता अतः सामान्य नित्य भी है ।'

आचार्य समन्तभद्रने स्याद्वाद का लक्षण इस प्रकार किया है –

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किंवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभङ्गनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः॥[10]

अर्थात् 'किञ्चित् कथञ्चित् कथञ्चन आदि स्याद्वाद के पर्याय शब्द हैं । वह स्याद्वाद सर्वथा एकान्तों का त्याग करके अर्थात् अनेकान्त को स्वीकार करके सात भङ्गों और नयों की अपेक्षा से हेय और उपादेय का भेदक है । अर्थात् स्याद्वाद के बिना हेय और उपादेय की व्यवस्था नहीं बन सकती ।'

आचार्य समन्तभद्र ने स्याद्वाद को श्रुतप्रमाण स्थापित करके उसके भेदों को नय कहा है । यथा –

स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यञ्जको नयः ।[11]

अर्थात् 'स्याद्वाद के द्वारा गृहीत अर्थ के विशेषों को जो व्यक्त करता है उसे नय कहते हैं ।'

नयवाद जैन दर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों में से एक है। असल में अनेकान्तत्मक अर्थका प्ररूपक स्याद्वाद है और उसीके फलित वाद, सप्तभंगीवाद और नयवाद है । ये तीनों वाद जैनन्याय की ही विशेष देन हैं क्योंकि जैनदर्शन अनेकान्तवादी है और अनेकान्तवाद का प्ररूपण स्याद्वाद के बिना नहीं हो सकता । किन्तु स्याद्वाद के द्वारा प्ररूपित अनेकान्तात्मक वस्तु में से जब कोई वक्ता या ज्ञाता किसी एक धर्म की मुख्यतासे वस्तुचर्चा करता है जैसे बौद्धदर्शन वस्तु को क्षणिक मानता है और अन्य दर्शन किसी को नित्य या किसी को अनित्य ही मानते हैं, तो यह एकान्तवादी दृष्टि नय है । किन्तु नय तभी सुनय है जब वह इतर दृष्टियों से निरपेक्ष न हो, अन्यथा वह दुर्नय कहा जायेगा क्योंकि वस्तु एकान्तरूप ही नहीं है । अतः निरपेक्ष प्रत्येक नय मिथ्या है किन्तु सब नयों का सापेक्ष समूह मिथ्या नहीं है । यही बात समन्तभद्र ने कही है –

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्॥[12]

२) युक्त्यनुशासनम् -

समन्तभद्र के दूसरे ग्रन्थ युक्त्यनुशासनमें ६४ पद्य हैं । उनके द्वारा भगवान् वर्धमान महावीर की स्तुति के व्याज से एकान्तवादी दर्शनों का निराकरण करते हुए महावीर के मत को अद्वितीय और उनके तीर्थ को सर्वोदयतीर्थ बतलाया है ।

सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्यकल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम् ।
सर्वापदामन्तकरं दुरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव॥[13]

अर्थात् 'हे वीर भगवान्, आपका तीर्थ सर्वान्तवान् है –- सामान्य-विशेष, एक-अनेक, विधि-निषेध आदि परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले सब धर्मो के समन्वय को लिये हुए है, साथ ही गौण और मुख्य की कल्पना को लिये हुए है अर्थात् अनेकधर्मात्मक वस्तु में से जो धर्म विवक्षित होता है वह मुख्य कहलाता है और जो अविवक्षित होता है वह गौण कहलाता है । इसी से उसमे विरोध को स्थान नहीं है । किन्तु जो मत इस अपेक्षावाद को स्वीकार नहीं करता और सर्वथा निरपेक्ष वस्तुधर्म को स्वीकार करता है, उसमें किसी भी धर्मका अस्तित्व बन नहीं सकता, अतः वह सब धर्मो से शून्य हो ठहरता है । इसलिए आपका ही तीर्थ सब दुःखों का अन्त करनेवाला है, निरन्त है – उसका खण्डन करना शक्य नहीं है । अतः वह सबके अभ्युदय का कारण होने से सर्वोदय तीर्थ है ।'

[9]मीमांसाश्लोकवर्तिकम् श्लो० २१-२३
[10]आप्तमीमांसा श्लो० १०४
[11]आप्तमीमांसा श्लो० १०४
[12]आप्तमीमांसा श्लो० १०४
[13]आप्तमीमांसा श्लो० ६१

सात भंगोंका उपपादन करते हुए कहा है –

विधिर्निषेधोऽनभिलाप्यता च त्रिरेकशस्त्रिर्द्विश एक एव।
त्रयो विकल्पास्तव सप्तधा अमी स्याच्छब्दनेयाः सकलार्थभेदे॥[14]

अर्थात् 'विधि, निषेध और अनभिलाप्यता अर्थात् स्यादस्त्येव, स्यान्नास्त्येव, स्यादवक्तव्य एव ये एक-एक करके तीन मूल विकल्प है। इनके साथ इनके विपक्षभूत धर्म को मिलाने से द्विसंयोगी भंग तीन होते हैं - स्यादस्ति नास्त्येव, स्यादस्ति अवक्तव्य एव, स्यान्नास्ति अवक्तव्य एव। और एक त्रिसंयोग भंग होता है - स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य एव। इस तरह ये सात भंग सम्पूर्ण अर्थभेद में घटित होते हैं और ये भंग स्यात् पद के द्वारा नेय हैं।'
इस प्रकार अन्य पद्यों के द्वारा एकान्तवादी दर्शनों के विविध मन्तव्यों का निराकरण करते हुए ग्रन्थकार ने युक्त्यनुशासन नाम को सार्थक सिद्ध किया है -

दृष्टागमाभ्यामविरुद्धमर्थप्ररूपणं युक्त्यनुशासनं ते।[15]

अर्थात् 'प्रत्यक्ष और आगम से अविरुद्ध अर्थ का प्ररूपण युक्त्यनुशासन है और आपको वही अभिमत है।'

३) स्वयंभूस्तोत्रम् -

समन्तभद्र के द्वारा रचित ग्रन्थ स्वयंभूस्तोत्र चौबीस तीर्थंकरों के स्तवन के रूप में है किन्तु यह स्तवन भी दार्शनिक चर्चाओं से ओतप्रोत है। उसमें भी पाँचवाँ सुमतिजिन स्तवन, नौवाँ सुविधिजिन स्तवन, ग्यारहवाँ श्रेयोजिन स्तवन, तेरहवाँ विमलजिन स्तवन और अट्ठारहवाँ अरजिन स्तवन विशेष महत्त्वपूर्ण है। इनमें स्याद्वाद, अनेकान्तवाद और नयवादों की दृष्टि से वस्तु स्वरूप का सम्यक् विश्लेषण किया गया है -

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रियाकारकमत्र युक्तम्।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति॥[16]

अर्थात् 'यदि वस्तु सर्वथा नित्य हो तो उसमें उत्पाद व्यय नहीं हो सकता, और न उसमें क्रिया-कारक की ही योजना बन सकती है। जो सर्वथा असत् है उसका कभी जन्म नहीं होता और जो सत् है उसका कभी नाश नहीं होता। बुझनेपर दीपक का सर्वथा नाश नहीं होता, वह उस समय अन्धकाररूप पुद्गल पर्याय के रूप में अपना अस्तित्व रखता है।'
नौवें सुविधिजिन के स्तवन में वस्तु को नित्यानित्यात्मक सिद्ध करते हुए लिखा है –

नित्यं तदेवेदमिति प्रतीतेर्न नित्यमन्यत्प्रतिपत्तिसिद्धेः।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरङ्गनिमित्तनैमित्तिकयोगतस्ते॥[17]

अर्थात् 'यह वही है इस प्रकार की प्रतीति होने से वस्तुतत्त्व नित्य नहीं, अनित्य है। इस प्रकार वस्तु का नित्य और अनित्यपन आपके मतमें विरुद्ध नहीं है क्योंकि वह बाह्य और अन्तरंग निमित्त और उनसे होनेवाले कार्य के सम्बन्ध को लिये हुए है। अर्थात् अन्तरंग और बहिरंग कारणों के योग से उत्पन्न हुई घट पर्याय की अपेक्षा अनित्य है।'
अट्ठारहवें अरजिन स्तोत्र में अनेकान्तदृष्टि को सच्ची बतलाते हुए लिखा है –

अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात्तदयुक्तं स्वघाततः॥[18]

'आपकी अनेकान्तदृष्टि सत्य (सच्ची) है। उसके विपरीत जो एकान्त मत है, वह शून्य रूप असत् है। अतः अनेकान्त दृष्टि से रहित जो कथन है वह सब मिथ्या है क्योंकि वह अपना ही घातक है।'

सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदूष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीह ते॥[19]

'सत् एक, नित्य, वक्तव्य और इसके विपक्ष रूप असत् अनेक अनित्य अवक्तव्य ये जो नय हैं - वस्तुके एक-एक धर्म के ग्राही हैं, वे सर्वथा रूपमें तो अति दोषयुक्त हैं और स्यात् रूप में पुष्टिकारक हैं। अर्थात् सर्वथा सत्, सर्वथा एक, सर्वथा नित्य, सर्वथा वक्तव्य या सर्वथा असत्, सर्वथा अनेक, सर्वथा अनित्य, सर्वथा अवक्तव्य रूपसे जो एकान्तवादी पक्ष

[14]युक्त्यनुशासन श्लो० ४५
[15]युक्त्यनुशासन श्लो० ४८
[16]स्वयंभूस्तोत्रम् श्लो० २४
[17]स्वयंभूस्तोत्रम् श्लो० ४३
[18]स्वयंभूस्तोत्रम् श्लो० ९८
[19]स्वयंभूस्तोत्रम् श्लो० १०१

हैं वे सब दोषयुक्त हैं, मिथ्या हैं । किन्तु यदि उनके साथ **'सर्वथा'** के स्थान में स्यात् या कथञ्चित् प्रयुक्त किया जाये कि स्यात् नित्य, स्यात् अनित्य आदि, तो वे सम्यक् होने से वस्तु के स्वरूप के पोषक होते हैं ।'

किन्तु इस प्रकार का स्याद्वाद जैन न्याय में ही है –

सर्वथा नित्यमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः ।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥[20]

'सर्वथारूपसे कथन करने के नियम का त्यागी और यथादृष्ट को अपेक्षा में रखनेवाला स्यात् शब्द आप जिनदेव के ही न्याय में है, दूसरे जो स्वयं अपना घात करनेके कारण अपने ही वैरी हैं, उन एकान्तवादियों के न्याय में नहीं है ।'

इस श्लोक के पूर्वार्ध में स्याद्वाद का स्वरूप बड़े सुन्दर और सरल ढंग से बतलाया है । जो सर्वथा के नियम को नहीं मानता तथा जिस सत् असत् रूप से वस्तु प्रतीत होती है, अपेक्षाभेदसे उसको स्वीकार करनेवाला स्याद्वाद है । जैसे द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु द्रव्यरूपसे नित्य है और पर्यायरूपसे अनित्य है । इसी स्तोत्र का आगामी पद्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । अनेकान्तवादी सबको अनेकान्तात्मक मानते हैं । तब अनेकान्त भी अनेकान्तात्मक हुआ । अतः अनेकान्त है और नहीं भी है, ऐसा कहनेपर अनेकान्त नहीं भी है तो एकान्तवाद आ जाता है । इस आपत्तिका परिहार करते हुए स्वामी समन्तभद्र ने नीचे लिखे अनुसार अनेकान्त में अनेकान्तत्व की योजना की है -

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात्॥[21]

'आपके मत में अनेकान्त भी प्रमाण और नय दृष्टि से अनेकान्त स्वरूप है । प्रमाण की अपेक्षा से अनेकान्त सिद्ध होता है और विवक्षित नयदृष्टि से अनेकान्त में एकान्तरूप सिद्ध होता है ।'

समन्तभद्र के इस कथन का विश्लेषण अकलंकदेव ने तत्त्वार्थवार्तिक में किया है । अनेकान्त और एकान्त दोनों ही सम्यक् और मिथ्या के भेदसे दो प्रकार के होते हैं । प्रमाण के द्वारा निरूपित वस्तु के एकदेश को सयुक्ति ग्रहण करनेवाला सम्यगेकान्त है । और एक धर्म का सर्वथा अवधारण करके अन्य धर्मों का निराकरण करनेवाला मिथ्या एकान्त है । एक वस्तु में युक्ति और आगम से अविरुद्ध अनेक विरोधी धर्मों को ग्रहण करनेवाला सम्यगनेकान्त है तथा वस्तु को तत् अतत् आदि स्वभावसे शून्य कहकर उसमें अनेक धर्मों की मिथ्या कल्पना करनेवाला अर्थशून्य वचनविलास मिथ्या अनेकान्त है । सम्यग् एकान्त नय कहलाता है तथा सम्यगनेकान्त प्रमाण । यदि अनेकान्त को अनेकान्त ही माना जाये और एकान्त का लोप किया जाये तो सम्यगेकान्त के अभाव में शाखादि के अभाव में वृक्ष के अभाव की तरह एकान्तों के समुदायरूप अनेकान्त का भी अभाव हो जायेगा । और यदि एकान्त ही माना जाये तो अविनाभावी अन्य धर्मों का लोप होने पर प्रकृत धर्म का भी लोप होने से सर्वलोप का प्रसंग आता है ।

स्वयंभूस्तोत्र के अन्तिम महावीर जिनस्तवन में स्याद्वाद को अनवद्य बतलाते हुए समन्तभद्र ने अपने स्तवन को पूर्ण किया है -

अनवद्यः स्याद्वादस्तव दृष्टेष्टाविरोधतः स्याद्वादः ।
इतरो न स्याद्वादः सद्वितयविरोधान्मुनीश्वराऽस्याद्वादः ॥[22]

'हे मुनीश्वर,'स्यात्' शब्दपूर्वक कथन को लिये हुए आपका जो स्याद्वाद है, वह निर्दोष है, क्योंकि प्रत्यक्ष और आगमादि प्रमाणों के साथ उसका कोई विरोध नहीं है । दूसरा जो **'स्यात्'** शब्दपूर्वक कथन से रहित सर्वथा एकान्तवाद है, वह निर्दोष नहीं है क्योंकि वह प्रत्यक्ष और आगमादि प्रमाणों से विरुद्ध है ।'

अन्ते -

इस प्रकार समन्तभद्र ने अपने स्तुतिपरक दार्शनिक प्रकरणों के द्वारा स्याद्वाद का संस्थापन, विवेचन और संवर्धन किया । और इस तरह वे स्याद्वाद के जनक कहलाये ।

*

सन्दर्भग्रन्थाः –

1. जैन न्यायशास्त्र, सिद्धान्ताचार्य पं० कैलासचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, सन् १९६६
2. श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि विरचित तत्त्वार्थसार (प्रस्ता०), सं० मुनि अमितसागर, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, सन् २०१०
3. श्रीमत्कुमारिलभट्टपादविरचितं मीमांसाश्लोकवर्तिकम्, चौखम्भासंस्कृतग्रन्थमाला, बनारस, सन् १८९८

[20]स्वयंभूस्तोत्रम् श्लो० १०२

[21]स्वयंभूस्तोत्रम् श्लो० १०३

[22]स्वयंभूस्तोत्रम् श्लो० १३८

4. देवागम अपरनाम आप्तमीमांसा, सं० जुगलकिशोर मुख्तार, वीरसेवामन्दिर-ट्रस्ट-प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६७
5. युक्त्यनुशासन, सं० विजयकुमार जैन, विकल्प प्रिन्टर्स, देहरादून, सन् २०२०
6. बृहत् स्वयंभू स्तोत्र, पं० विद्याकुमार सेठी तथा डॉ. यतीन्द्रकुमार जैन, दिगम्बर जैन समाज (कुकनवाली, राजस्थान), वि० सं० २०३६